RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल–011/2015-17

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

साप्ताहिक आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

मूल्य : 2 रु.
वर्ष: 72 अंक : 37
सृष्टि संवत् 1960853116
13 दिसम्बर 2015
दयानन्दब्द 189
वार्षिक : 100 रू.
आजीवन : 1000 रू.
दूरभाष : 2292926, 5062726
जालन्धर

वर्ष–72, अंक : 37, 10/13 दिसम्बर 2015 तदनुसार 28 मार्गशीर्ष सम्वत् 2072 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

सोम वालो ! हिंसा मत करो

-ले० श्री स्वामी वेदानंद जी (दयानन्द) तीर्थ

मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे कृणुध्वं राय आतुजे।
तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति न देवासः कवत्नवे।।

–ऋ० ७।३२।९

शब्दार्थ–हे **सोमिनः** = सोमवालो ! **मा**= मत **स्रेधत**= हिंसा करो। **महे**= महत्त्व के लिए **दक्षत**= उत्साहित होओ। **आतुजे**= सर्वविध बल तथा **राये**= धन के लिए **कृणुध्वम्**= उद्योग करो, क्योंकि **तरणिः**= विपत्तियों को पार करनेवाला रक्षक ही **जयति**= जीतता है और **क्षेति**= वास करता एवं **पुष्यति**= पुष्ट होता है। **देवासः**= विद्वान् लोग अथवा प्राकृत शक्तियाँ **कवत्नवे**= कुत्सित आचार-व्यवहार के लिए **न**= नहीं होते।

व्याख्या–यद्यपि वेद में राजा के कर्त्तव्यों में अन्यायी, आततायी, अत्याचारी मनुष्यों को मृत्युदण्ड देने तक का विधान है, तथापि अहिंसा वेद का एक प्रधान विषय है। **'मा स्रेधत'** [= हिंसा मत करो] यह वेद का स्पष्ट आदेश है। उत्तरार्ध में इसका हेतु दिया है–**'तरणिरिज्जयति'** = रक्षक ही जीतता है। मनुष्य विजय पाने के लिए हिंसा करता है, मारकाट करता है किन्तु उससे उसे अक्षय विजय आज तक नहीं मिला। इतिहास में उन महापुरुषों के नाम आदर-सत्कार से स्मरण किये जाते हैं, जिन्होंने प्राणियों की रक्षा का उपदेश किया। उनके नाम लोगों की जिह्वा और हृदय में रहते हैं। मारकाट करने वालों के नाम इतिहास के पन्नों में भले ही अङ्कित हों, किन्तु लोगों की दिल की दीवाल पर उन्हें कोई न लिख सका। संसार कसाई का आदर नहीं करता वरन् उस भक्त का आदर करता है जो प्रातः घर से निकलकर मूक प्राणियों को अन्न देने जाता है। हिंसा से महत्त्व नहीं मिलता। तुम **'दक्षता महे'** महत्त्व के लिए उत्साह करो। तुम अपने उत्साह को मारकाट में व्यय न करो, वरन् इस उत्साह के द्वारा महत्त्व प्राप्त करो। सामान्य संसार शरीर को ही सब-कुछ समझता है। शरीर के सुख देने वाले उपकरणों में धन प्रधान है, अतः **'कृणुध्वं राय आतुजे'**–धन और सर्वविध बल की प्राप्ति के लिए उद्योग करो। **'उद्योगेनैव सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः'** उद्योग से ही कार्य सिद्ध होते हैं न कि केवल मनोरथों से। आज तक मनोरथ-लड्डुओं से किसी का पेट भरना तो दूर रहा जीभ भी मीठी नहीं हुई, अतः उद्योग करो। उद्योग का फल धन और बल होना चाहिए, उसका परिणाम महत्त्व होना चाहिए। वह लोकरक्षा से प्राप्त होगा, अर्थात् अपने धन, तन को जनरञ्जन में लगा दो। **'तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा'** [ऋ० ७।३२।२०]= रक्षक ही विशाल बुद्धियोग के कारण ज्ञान और बल का दान करना चाहता है। उसे ज्ञात है कि दान से इसका नाश नहीं होता, अतः तरणि जहाँ विजय प्राप्त करता है, वहाँ साथ ही **'क्षेति पुष्यति'** = रहता और फूलता-फलता भी है। विजय के साथ समृद्धि, फूलना-फलना तो आनुषङ्गिक हैं। हिंसा को निन्दित मानकर वेद कहता है **'न देवासः कवत्नवे'**= देव कुत्सित आचार-व्यवहार के लिए नहीं, अर्थात् हिंसादि कुकर्म करने वाले को दैवीसम्पत्ति नहीं मिल सकती।

वर्ष 2016 के नए कैलेण्डर मंगवाएं

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, चौक किशनपुरा जालन्धर द्वारा प्रति वर्ष हजारों की संख्या में नव वर्ष के कैलेण्डर महर्षि दयानन्द के चित्र के साथ देसी तिथियों सहित छपवाए जाते हैं। गत कई वर्षों से आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब वैदिक साहित्य आधे मूल्य पर आर्य जनता को उपलब्ध करवा रही है। इसी प्रकार सन् 2016 के महर्षि दयानन्द सरस्वती के चित्र वाले कैलेण्डर भी आधे मूल्य पर आर्य जनता को दिए जाएंगे। पिछले वर्ष की भान्ति इस वर्ष भी कैलेण्डर का मूल्य चार रुपये प्रति तथा 400 रुपए सैकड़ा रखा गया है। इसलिये सभी आर्य समाजें, शिक्षण संस्थाएं व आर्य बन्धु शीघ्र अति शीघ्र कैलेण्डर सभा कार्यालय से मंगवा कर अपने सदस्यों व इष्ट मित्रों में वितरित करें। कार्यालय का समय प्रातः 10.00 बजे से सायं 5.00 बजे तक है। रविवार को अवकाश रहता है इसलिये समय पर अपना व्यक्ति भेज कर कैलेण्डर मंगवाएं।

-प्रेम भारद्वाज सभा महामंत्री

आर्यसमाज के नौवें व दसवें नियमों की सामाजिक उपयोगिता

-ले० श्री महात्मा चैतन्य मुनी वैदिक वशिष्ठ आश्रय (महर्षि दयानन्द धाम) महादेव, सुन्दर नगर, हि.प्र.

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने व्यक्ति और समाज की चतुर्दिक उन्नति को लक्ष्य में रखकर आर्यसमाज की स्थापना की तथा इसके बहुत ही स्वर्णिम् दस नियम भी स्थापित किए। हम पूरे विश्वास के साथ कह सकते हैं कि संसार की अन्य किसी भी संस्था के ऐसे पूर्ण, सार्वभौमिक, सार्वकालिक, सर्वहितकारी और असाम्प्रदायिक नियम नहीं हैं। वास्तव में आर्यसमाज के नियम इतने अधिक व्यवहारिक एवं समाजोपयोगी हैं कि इन पर कोई भी उंगली नहीं उठा सकता है। आर्यसमाज का सदस्य बनने के लिए व्यक्ति को यही लिखकर देना होता है कि वह इन नियमों का दृढ़तापूर्वक अनुपालन करेगा। नियम व्यक्ति को किसी अलग मत, मजहब या सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं करते हैं बल्कि सामने एक आदर्श आचारसंहिता के रूप में इन्हें प्रस्तुत किया जाता है। उसे एक आदर्श चिन्तन के साथ जोड़ा जाता है कि व्यक्तिगत व समाजगत उन्नति के लिए उसे किन-किन बातों का अनुकरण करना अपेक्षित है। आर्यसमाज के दस के दस नियम ही एक-दूसरे से बढ़कर हैं मगर यहां पर हम केवल अन्तिम अर्थात नौंवे और दसवें नियम पर थोड़ी सी संक्षिप्त चर्चा करना चाहेंगे ताकि उनकी उपयोगिता और उत्कृष्टता के बारे में हमें मालूम हो सके। इन दोनों ही नियमों को हम एक-दूसरे का पूरक मानकर चलें तो इनकी महानता और भी अधिक सार्थकता के साथ हमारे सामने आऐगी। नौवां नियम है-'प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।' वास्तव में यदि व्यवहारिकता के स्तर पर हम देखें तो व्यक्ति की केवल अपनी उन्नति समाज की उन्नति के बिना सार्थक नहीं है। एक व्यक्ति अमीर और शिक्षित बन भी जाता है मगर उसके शहर के अन्य नागरिक या पड़ोसी यदि गरीब और अशिक्षित रह जाते हैं तो उनमें घिरा हुआ वह अकेला उन्नत व्यक्ति कभी सुखी नहीं रह सकता है। उसे उन लोगों द्वारा किया गए अनर्गल व अशोभनीय कार्यों के कारण तथा उनके द्वारा हत्या व चोरी आदि किए जाने के भय के बनें रहते वह कभी भी चैन की नींद नहीं सो सकेगा। सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्य का विकास सामूहिक उन्नति में ही निहित है क्योंकि समाज में एक-दूसरे के सहयोग के बिना चल पाना कठिन ही नहीं बल्कि असंभव भी है। अपनी उन्नति के साथ-साथ सभी की उन्नति के लिए प्रयास करने की बात इसीलिए महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्यसमाज के नियमों में रखना अनिवार्य समझा।

सामाजिक प्राणी होने के नाते तथा मनुष्य होने के कारण व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है कि वह दूसरों के दु:खों को दूर करने के लिए सदा तत्पर रहे। यदि व्यक्ति ऐसा नहीं करता है तो उसे स्वार्थी कहा जाता है। समाज में व्यक्ति के स्वार्थ को अधर्म और धर्म के रूप में आंका जाता है। महर्षि दयानन्द जी ने तो अपनी संस्था का मुख्य उद्देश्य संसार का उपकार करना निर्धारित किया है इसीलिए इस भावना को कार्यरूप देने के लिए व्यक्ति को केवल अपने ही स्वार्थ तक सीमित नहीं रहना चाहिए बल्कि परार्थ के लिए सदा तैयार रहना चाहिए। जो व्यक्ति केवल अपनी ही उन्नति चाहता है वह कभी भी परार्थ का कार्य करने के लिए उद्यत नहीं हो सकेगा। बल्कि इसके विपरीत अपने स्वार्थ को पूर्ण करने के लिए वह कई प्रकार के अनैतिक कार्यों का भी सहारा लेगा। हम अपने चारों ओर देखते हैं कि ऐसा स्वार्थी व्यक्ति अपनी एषणाओं को पूर्णता देने के लिए कई प्रकार के ऐसे घृणित कार्य भी कर बैठता है जिनकी अपेक्षा सभ्य कहलाने वाले मानव से नहीं की जा सकती है। यदि अपने स्वार्थ में ही व्यक्ति डूब जाए तथा इस प्रकार के अमानवीय कृत्य करने लगे तो भला उसमें और पशु में क्या अन्तर रह जाऐगा ? आज समाज में जो एक-दूसरे को लूटने-खसूटने की भावना बढ़ रही है उसका कारण केवल और केवल मात्र यही है कि व्यक्ति दूसरे के हित को दरकिनार कर बैठा है। चाहे वह परिवार का झगड़ा हो, सामाजिक संस्थाओं का या फिर राष्ट्र का, सबके पीछे यह स्वार्थ की भावना ही कार्य कर रही है। प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता है कि बस सब कुछ मेरे ही अधिकार में आ जाए। व्यक्ति की यह एकाकी और कुत्सित भावना अनेक प्रकार के बैर-वैमनस्य को प्रश्रय देने वाली है। इसका निराकरण इसी बात से हो सकता है कि व्यक्ति अपने स्वार्थों से ऊपर उठकर समाज की सामूहिक उन्नति की भावना को अपने मन में जगह दे। इसी भावना से व्यक्ति के मन में सन्तोष की भावना भी आ सकती है अन्यथा एषणा और स्वार्थ के जंगल में भटकने वाला व्यक्ति कभी भी तृप्त नहीं हो सकेगा। जहां स्वार्थ की भावना एक अन्तहीन अतृप्ति के जंगल में भटकाने वाली दौड़ है वहीं परार्थ की भावना व्यक्ति का ठहराव तथा सन्तुष्टि है।

सुख और शान्ति का आधार त्याग है। यदि समाज में प्रत्येक व्यक्ति महर्षि जी के इस वाक्य को अगर आत्मसात् कर ले तो सब प्रकार की कटुताएं, लड़ाई-झगड़े स्वत: ही समाप्त हो जाऐंगे अन्यथा यदि इसके विपरीत चलते रहे तो ये कटुताएं और भी अधिक विकराल रूप धारण करती चली जाऐंगी। मैं बढ़ूं तो दूसरा भी बढें, मैं चलूं तो दूसरा भी चले, मैं फलूं तो दूसरा भी फले इसी भावना से समाज का चरम उत्कर्ष होना संभव है। इस सम्बन्ध में मानव शरीर का दृष्टान्त देना यहां पर बहुत ही सार्थक लग रहा है। शरीर का कोई एक अंग यदि यह सोचे कि बस मैं ही बढ़ूं, दूसरा नहीं। तो इस स्वार्थ की भावना से उसका अपना आप भी विकारों से ग्रसित हो जाऐगा। हां उसके स्वस्थ रहने का रहस्य इसी में है कि वह स्वयं तो बढ़े पर दूसरे को भी बढ़ाने की कामना से अपना कार्य करें। इससे पूरा शरीर स्वस्थ और सबल रहेगा और वह स्वयं भी स्वस्थ रह सकेगा। शरीर के किसी भी अंग को हम ले ले उसमें यदि स्व की भावना आ जाए तो वह सारे शरीर के साथ-साथ अपना अस्तित्व भी खो बैठेगा। ठीक यही बात हम समाज पर भी लागू कर सकते हैं। एक का बढ़ना पर्याप्त नहीं है और न ही उसका वह बढ़ना उसके स्वयं के लिए भी हितकर है। हां सामूहिक विकास में ही सबका भला है और उस सबके भले में ही उसका अपना भला भी छिपा हुआ है। इस नियम में महर्षि जी ने व्यक्ति को अपने अधिकारों के प्रयोग की बात तो कही है मगर साथ ही उसे उसके कर्त्तव्यों का स्मरण भी कराया है। इसी समाज में जीओ और जीने की भावना कार्यान्वित हो सकती है। महर्षि जी द्वारा दिया गया प्रत्येक नियम अपने आप में एक बहुत बड़ा रहस्य और व्यक्ति तथा समाज के विकास की थाती अपने अपने भीतर समेटे हुए हैं मगर हमें उसकी गहनता पर मनन और चिन्तन करके उसे ईमानदारी के साथ कार्यरूप देने की जरूरत है। उनका प्रत्येक नियम हमें मानव मूल्यों तथा आध्यात्मिकता की ऊंचाईयों को छूता हुआ प्रतीत होता है। अपनी उन्नति के साथ-साथ जो दूसरे की उन्नति की भी कामना करेगा, न केवल कामना ही करेगा बल्कि उसके लिए अपना सहयोग और सक्रिय प्रयास भी करेगा उसका न केवल यह जीवन संवरेगा बल्कि मानों उसने अपने परलोक को भी संवार लिया। क्योंकि उसी के हृदय में यह भावना आ सकेगी।

सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया:।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु:खभाग्भवेत्।।

संसार के सभी प्राणी सुखी हों, स्वस्थ हों, भद्रभाव से परिपूर्ण हों तथा इस सृष्टि के कोई भी किसी भी प्रकार के दु:ख से पीड़ित न हो...ऐसी भावना प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में स्थापित हो सके इसीलिए दयालु देव दयानन्द जी ने आर्यसमाज के इस नौवें नियम में एक ऐसा सूत्र हमारे हाथ में थमाया है जिसमें व्यक्ति, समाज राष्ट्र और समूचे विश्व के न केवल सामूहिक विकास का अमूल्य रहस्य छुपा हुआ है बल्कि सुख, शान्ति और आत्मोन्नति का रहस्य भी नीहित है।

यहां प्रश्न उठ सकता है कि दूसरे की उन्नति के लिए हम परतन्त्र क्यों रहें।

(शेष पृष्ठ 6 पर)

सम्पादकीय.....✍

ऋषि निर्दिष्ट शिक्षा प्रणाली से ही व्यक्तित्व का विकास सम्भव

शिक्षा मानव समाज का अभिन्न अंग होने के कारण मानव के निर्माण का प्रमुख घटक है। मनुष्य की जीवन यात्रा का आरम्भ शिक्षण से होता है। विद्यार्जन की साधना ही व्यक्ति के भावी जीवन की सफलता का मूलमन्त्र है। समुचित विकसित जीवन के लिए शिक्षा की महत्ता को सभी ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। परन्तु विडम्बना यही है कि शिक्षा जगत् में प्रबल प्रयत्न करने पर भी मानव का समुचित निर्माण एवं विकास दृष्टिगोचर नहीं हो रहा। समय-समय पर मनीषियों द्वारा शिक्षा को परिभाषित किया जाता रहा है। यहाँ हम महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के स्वरूप को उद्घाटित करने का प्रयास करेंगे जिसके परिपेक्ष्य में व्यक्ति निर्माण की इकाई के साथ समाज व राष्ट्र का निर्माण सम्भव है। शिक्षा के विषय में महर्षि की मान्यता है- जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियता आदि गुणों का विकास हो और अविद्यादि दोष छूटें उसको शिक्षा कहते हैं। इसी तथ्य को महर्षि दयानन्द सरस्वती जी व्यवहारभानु में स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि- जिससे मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों की प्राप्ति और अविद्यादि दोषों को छोड़ के सदा आनन्दित हो सके, वह शिक्षा कहाती है।

महर्षि दयानन्द के मन्तव्यानुसार शिक्षा परिष्कार तथा संस्काराधान का प्रथम साधन है। इसी विचार से उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के दूसरे एवं तीसरे समुल्लास प्रमुखत: शिक्षा के सम्बन्ध में ही लिखे। इन दोनों समुल्लासों में शिक्षा के प्राथमिक व मूलभूत सिद्धान्तों का वर्णन करते हुए बाल शिक्षा तथा अध्ययनाध्यापन विधि के अन्तर्गत शिक्षणालयों के लिए पाठ्यक्रम की भी समायोजना की है। शिक्षा मानव निर्माण की प्रमुख सोपान है। इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए दूसरे समुल्लास के आरम्भ में शतपथ का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए स्वामी जी लिखते हैं- मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरूषो वेद। अर्थात् प्रशस्त माता, प्रशस्त पिता, तथा प्रशस्त आचार्य वाला पुरूष ही ज्ञानवान होता है। सुयोग्य माता-पिता व आचार्य के संरक्षण में बालक मानवीय गुणों को धारण करके मानव संज्ञा को सार्थक करता है। इस समुल्लास में वर्णित बाल शिक्षा की उत्तम प्रणाली गृहस्थों के लिए वरणीय एवं उपयोगी है। यह मनुष्य निर्माण की आधारभूत शिक्षा है, जिसे माता-पिता के द्वारा घर में प्रदान किया जाता है। तदनन्तर गुरूकुल पाठशाला में अध्ययन का क्रम आरम्भ होता है। जिसमें वह आचार्य का अन्तेवासी बनकर शास्त्रीय ज्ञान को अधिगत करता हुआ उसे आचरणरूप में भी आत्मसात् करता है तथा विद्या को प्राप्त करके स्नातक की उपाधि से अलंकृत हो जाता है। विद्वान् शिक्षक का स्वरूप तथा उनके कर्तव्य को बोध वेद में विस्तार से वर्णित किया गया है। वेद की दृष्टि में विद्वान् कहलाने के लिए केवल विद्या ही आवश्यक नहीं अपितु उसके साथ तपस्या, धार्मिकता व सदाचार आदि गुण भी होने चाहिए। ऋग्वेदीय प्रमाण से महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं कि- वही वस्तुत: विद्वान् है जो स्वयं धर्म मार्ग पर चलता हुआ अन्यों को सुगम और दुर्गम मार्गों में से धर्म मार्ग का उपदेश कर सके।

महर्षि दयानन्द जी ने मन्त्रों के भाष्य में विद्वानों के कर्त्तव्यों का प्रतिपादन करते हुए उन पर विद्या-प्रचार तथा समाज सुधार का एक बड़ा उत्तरदायित्व सौंपा है। महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं कि- विद्वानों को चाहिए कि अविद्या की निन्दा और दोषों का निवारण करें। जो शरीर और मन को विषयासक्ति, प्रमाद, हिंसा आदि बुरे कर्मों में लगाते है, उन्हें उनसे दूर करें तथा सर्वत्र सद्गुणों का प्रसार करें। विद्वज्जन सब मनुष्यों को सब विद्याएं पढ़ाकर विद्यावान्, बहुश्रुत, स्वछन्द और सुरक्षित कर दें जिससे वे संशयरहित होकर सदा सुखी रहें। विद्वान् शिक्षक का कर्त्तव्य राष्ट्र के भावी कर्णधार शिष्यों को विद्या एवं चरित्र दोनों की शिक्षा देकर सुयोग्य बनाना है। इसके लिए उन्हें अगाध पाण्डित्य के साथ-साथ सच्चरित्रता, धार्मिकता आदि अन्य विविध गुणों से भी भूषित करना आवश्यक है। अध्यापक कैसे हों? इस विषय पर महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं कि- जो नवीन-नवीन विद्याओं का ग्रहण करने के इच्छुक, ऐश्वर्य के अभिलाषी, जितेन्द्रिय, विद्वान् अध्यापक लोग अज्ञानियों को ज्ञान देकर विद्वान् करते हैं, वे ही पूजनीय होते हैंञ जो मेधावी, परोपकारी, आप्त विद्वान् , पूर्ण पण्ड़ित, विद्या के ऐश्वर्य से युक्त, अहिंसक, ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय पुरूष हो, उसी को योग्य अध्यापक जानकर शिष्यों को अपनी सभी शंकाओं का निवारण करना चाहिए। किन्तु जो अविद्वान्, ईर्ष्यालु, कपटी और स्वार्थी मनुष्य हो, उससे सर्वदा दूर रहना चाहिए।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने ग्रन्थों में शिक्षा के विभिन्न बिन्दुओं पर प्रकाश ड़ालते हुए ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के भाष्य में भी अनेक वेदमन्त्रों का शिक्षापरक अर्थ करते हुए शिक्षाविषयक महत्त्वपूर्ण तथ्यों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है, जिसके माध्यम से वैदिक शिक्षा विज्ञान भी हमारे सम्मुख व्यक्त होता है। ऋषि के मन्तव्यानुसार वेद में शिक्षा की उपादेयता तथा अनिवार्यता, विद्या प्राप्ति के उपाय, शिक्षकों की योग्यता तथा कर्त्तव्य, विद्यार्थियों के कर्त्तव्य, विद्वान् अध्यापक द्वारा सुपात्र-कुपात्र के विचारपूर्वक विद्यादान विद्वानों के कर्त्तव्य तथा उनके द्वारा शिल्पविद्या की उन्नति, समाज में विद्वानों का सेवन व सत्कार, कन्याओं की शिक्षा में दण्ड़ का विधान, राजकार्यों में विद्वानों के सत्परामर्श की ग्राह्यता आदि विषयों का सम्यक् स्पष्टीकरण दृष्टिगत होता है। महर्षिकृत वेद भाष्य के शिक्षाविषयक तथ्य बहुत ही महत्वपूर्ण तथा सामयिक दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। शिक्षा के सुफल को पाने के लिए आज के निर्धारित शिक्षा सम्बन्धी मापदण्ड़ परिवर्तनीय हैं। पूर्वकाल में वेदों की सहायता लेकर गौतम वशिष्ठ, आपस्तम्ब आदि धर्मसूत्रकारों ने अपने ग्रन्थों में ब्रह्मचारी शिष्य के कर्त्तव्य, आचार्य का महत्त्व तथा उनके कर्त्तव्य आदि प्रकरण प्रतिपादित किए हैं। वेदों में शिक्षा विषयक वे तत्त्व कहां किस प्रकार निहित हैं यह प्रमुखतया दयानन्द के वेदभाष्य से ही हमें ज्ञात होता है।

महर्षि दयानन्द द्वारा लिखित साहित्य में जिस शिक्षा विज्ञान का विशद वर्णन मिलता है, निश्चय ही शिक्षा की उस सरणि से छात्रों का शिक्षित करने वाले सुयोग्य शिक्षक के प्रयास से वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक व राष्ट्र सम्बन्धी समस्त समस्याओं का समाधान सम्भव है। समस्याओं का निदान हमारे मन-मस्तिष्क में है और निर्मल अन्त:करण का निर्माण शिक्षक, आचार्य और गुरूजनों के अधीन है। जिसके प्रकाश में व्यक्ति अपना एवं समाज का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। उत्तम शिक्षा के इस सर्वातिशयी महत्व को हमें स्वीकार करना चाहिए।

-प्रेम भारद्वाज, संपादक एवं सभा महामन्त्री

ईश्वर व जीवात्मा का यथार्थ उपदेश देने से महर्षि दयानन्द विश्वगुरु हैं

-ले० मनमोहन कुमार आर्य, 196 चुक्खूवाला रोड, देहरादून

यह संसार वैज्ञानिकों के लिए आज भी एक अनबुझी पहेली ही है। आज भी वैज्ञानिक इस सृष्टि के सृष्टा की वास्तविक सत्ता व स्वरुप से अपरिचित हैं। यदि उन्होंने महर्षि दयानन्द सरस्वती की तरह वेदों की शरण ली होती तो वह इस रहस्य को जान सकते थे। आज का संसार दोहरे मापदण्डों वाला संसार है। बिना जाने व समझे वेदों को भी अन्य मतों के धार्मिक ग्रन्थों के समान एक धार्मिक ग्रन्थ मान लिया गया है। इसके पीछे कुछ विदेशियों का अपना स्वार्थ दिखाई देता है जिससे उनके मतों की वास्तविकता समाज के सामने न आ जाये। सच्चाई यह है कि वेद अन्य मत मतान्तरों की तरह, रूढ़ अर्थ में प्रयोग धर्म, की धार्मिक पुस्तक नहीं है अपितु यह सब सत्य ज्ञान व विद्या की पुस्तक हैं। वेद आज भी अपने मूल स्वरूप में विद्यमान हैं।

वेदों की उत्पत्ति सृष्टि के आरम्भ में इस सृष्टि के रचयिता सर्वव्यापक व सर्वान्तर्यामी परमेश्वर के द्वारा हुई थी। उन्होंने सृष्टि और मनुष्य के कर्त्तव्यों आदि का विस्तृत ज्ञान आदि सृष्टि में वेदों के माध्यम से चार ऋषियों की हृदय गुहा में अन्तः प्रेरणा द्वारा दिया था। वेदों का ज्ञान मन्त्रों के रूप में दिया गया है जो संस्कृत में है। इन वेद मन्त्रों के अध्ययन से ही संस्कृत भाषा की उत्पत्ति हुई है। पहले सृष्टि की आदि में ईश्वर ने चार ऋषियों को वेदों का ज्ञान दिया। फिर इन ऋषियों ने अन्य लोगों में वेदों का प्रचार किया। वेद ज्ञान दिये जाने से पूर्व किसी भाषा का अस्तित्व नहीं था।

यह वेद ज्ञान व वेद मन्त्र ही भाषा के प्रथम आधार व संस्कृत भाषा के मूल स्त्रोत हैं। सृष्टि के आरम्भ के अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा व ब्रह्मा आदि ऋषि ईश्वर के स्वरूप के साक्षात्कर्ता थे जिन्हें वेदों के सत्य अर्थों का यथार्थ ज्ञान था और उन्होंने इनका प्रचार कर संसार से अज्ञान व सभी भ्रान्तियों को दूर किया। महाभारतकाल तक यह व्यवस्था सुचारु रूप से चलती रही।

महाभारत का युद्ध होने के बाद अध्ययन अध्यापन में बाधा उत्पन्न हुई। वेद मन्त्रों के अर्थ जानने की योग्यता संसार के लोगों में न रही, इस कारण वेदों के अनेक भ्रान्तिपूर्ण व मिथ्या अर्थ प्रचलित हो गये। इसी कारण संसार में अज्ञान का अन्धकार फैला और नाना मत-मतान्तर उत्पन्न हुए। समाज के कुछ प्रबुद्ध लोगों ने अपनी-अपनी बुद्धि व योग्यतानुसार शिक्षा का प्रचार किया। प्रायः उनके अनुयायियों ने उन्हें दिव्य मनुष्य या महापुरूष मानकर प्रचारित किया। यह दावा किया गया कि उन मतों की सभी शिक्षायें सत्य व यथार्थ हैं, जबकि ऐसा नहीं था। सभी मतों में सत्य व असत्य का मिश्रण है जिसका दिग्दर्शन महर्षि दयानन्द सरस्वती (1825-1883) ने अपने ग्रन्थों मुख्यतः सत्यार्थ प्रकाश के अन्तिम 4 अध्यायों में कराया है।

महर्षि दयानन्द के समय में सभी मत मतान्तरों में ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति के स्वरूप को लेकर भ्रम की स्थिति थी। उन्होंने भ्रम निवारण करते हुए ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति, इन तीन सत्ताओं के त्रैतवाद का सिद्धान्त संसार के सम्मुख रखा।

ईश्वर सहित तीनों पदार्थों का सत्यस्वरूप सामने रखते हुए उन्होंने इन तीनों सत्ताओं को अनादि व नित्य बताया। उनका मानना था कि ईश्वर, जीवात्मा व मूल-कारण प्रकृति अनुत्पन्न, अनादि व नित्य है। इस कारण यह तीनों सत्तायें अनिवाशी व अमर भी हैं अर्थात् इनका नाश अथवा अभाव कभी नहीं होता। उनके समय में ईश्वर के विषय में बहुत सी मिथ्या मान्यताएं प्रचलित थी जो आज भी प्रचलित हैं अपितु इनमें वृद्धि हुई है। स्वामीजी ने उन सभी का खण्डन व आलोचना की और ईश्वर के सत्यस्वरूप का उल्लेख करते हुए कहा कि ईश्वर सच्चिदानन्द-स्वरूप, सर्वज्ञ, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, सृष्टि का कर्ता-धर्ता-हर्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है। इन लक्षणों वाली सत्ता को ही परमेश्वर मानना और उसी की उपासना करना सबके लिए लाभकारी व श्रेयस्कर है। ईश्वर के इन लक्षणों से अवतारवाद व मूर्तिपूजा सहित इनके विपरीत ईश्वर विषयक सभी मान्यताओं का खण्डन हो जाता है। ईश्वर की उपासना का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ महर्षि पतंजलि का योग दर्शन है। उसका अध्ययन कर ईश्वर का साक्षात्कार किया जा सकता है।

महर्षि दयानन्द ने अपने व्यापक वेद और वैदिक साहित्य के अध्ययन व ज्ञान के आधार पर उपासना की सरलतम विधि वैदिक सन्ध्या लिखी है। इसी के आधार पर आज संसार के करोड़ों लोग उपासना करते हैं। इस सन्ध्या की विधि में योगदर्शन की उपासना पद्धति का निचोड़ वा सार प्रस्तुत किया गया है जिसका अभ्यास करके मनुष्य ईश्वर व अपनी आत्मा दोनों का साक्षात्कार कर सकता है। ईश्वर सहित अन्य सभी विषयों व विद्याओं का अध्ययन करने के लिए मनुष्यों को सत्यार्थ प्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के अध्ययन का आरम्भ कर उपनिषद, दर्शन, मनुस्मृति व वेदों का अध्ययन करना चाहिये जिससे सभी शंकायें व भ्रान्तियां दूर होती हैं। इसके साथ ही साधना के सरल व प्रभावशाली उपायों का ज्ञान होने से मनुष्य जीवन के उद्देश्य व लक्ष्य, ईश्वर का साक्षात्कार, की प्राप्ति होकर जीवन को सफल बनाया जा सकता है।

महर्षि दयानन्द जी ने अपने ग्रन्थों में जीवात्मा के सत्य स्वरूप पर भी प्रकाश डाला है। अपने लघु ग्रन्थ 'स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश' में 'जीव' विषयक अपनी मान्यता लिखते हुए वह बताते हैं कि जीवात्मा इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, ज्ञानादि गुणयुक्त, अल्पज्ञ, नित्य व चेतन सत्ता है। नित्य का अर्थ है कि यह जीव हमेशा से है और हमेशा रहेगा अर्थात् यह अनुत्पन्न और अविनाशी सत्ता है। जीवात्मा को अपने पूर्व जन्मों के कर्मानुसार जीवन व योनि मिलती है जिसमें वह अपने प्रबन्ध के अनुसार फल भोग कर व नये कर्मों को करके मृत्यु को प्राप्त होती है और मृत्यु के पश्चात प्रारब्ध के अनुसार पुनः नया जन्म धारण करती है। जन्म-मरण का यह चक्र अनादि काल से चला आ रहा है और इसी प्रकार सदा चलता रहेगा जब तक कि वेदानुसार सद्कर्मों को करके जीवात्मा की मुक्ति न हो जाये। मनुष्य यदि अच्छे कर्म करता है तो उसकी उन्नति होती है जिससे वह मृत्यु के बाद श्रेष्ठ उन्नत योनि व अवस्थाओं में जन्म ग्रहण करता है और यदि उसके अच्छे कर्म कम व बुरे कर्म अधिक होते हैं तो वह अवनति को प्राप्त होकर निम्न योनियों में जन्म ग्रहण करता है जहां उसे अपने बुरे कर्मों के फलों को भोगना होता है। महर्षि दयानन्द के यह विचार भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं कि जीव और ईश्वर स्वरूप और वैधम्य से भिन्न और व्याप्य-व्यापक और साधम्य से अभिन्न हैं। अर्थात् जैसे आकाश से मूर्तिमान द्रव्य कभी भिन्न न था, न है न होगा और न कभी एक था, न है और न होगा, इसी प्रकार परमेश्वर और जीव का व्याप्य-व्यापक, उपास्य-उपासक और पिता-पुत्र आदि कारण व कार्य प्रकृति जड़ है। कारण प्रकृति अनुत्पन्न तथा त्रिगुणात्मक अर्थात् सत्व, रज व तमोगुण वाली है। यही परमाणु व अणुरूप होकर स्वरूपाकार से बहुत प्रजारूप हो जाती है अर्थात् यह प्रकृति परिणामिनी होने से अवस्थान्तर अर्थात् परिवर्तनों को प्राप्त होकर नाना स्वरूप व आकारवाली हो जाती है। पृथिवी, चन्द्र, ग्रह-उपग्रह, सूर्य, नक्षत्र आदि सभी इस त्रिगुणात्मक प्रकृति के विकार वा कार्य हैं। इसको विस्तार से जानने के लिए सांख्य दर्शन सहित वेदों के नासदीय सूक्त आदि का अध्ययन करना चाहिये। यह भी जानने योग्य है कि यह सृष्टि प्रवाह से अनादि है अर्थात् इस प्रकृति से सृष्टि का निर्माण होता है, सृष्टि निर्धारित अवधि तक बनी रहती है, फिर प्रलय होती है और प्रलय में यह पुनः अपने मूल स्वरूप में आ जाती है। **(शेष पृष्ठ 6 पर)**

सत्पुरुष अपने दोषों को दूर करता है

-ले० पं० रमेश कुमार शास्त्री-मुहल्ला गोबिन्दगढ़ जालन्धर शहर

संसार के सभी प्राणियों में कोई न कोई दोष अवश्य ही होते है परन्तु उनके विभिन्न दोषों के होने पर कोई-न-कोई गुण भी अवश्य होता है। परन्तु जो सत्पुरुष ज्ञानी, महात्मा व्यक्ति दूसरों के अन्दर विद्यमान गुणों को ही देखता है और अपने दोषों को दूर करता है। अधिकांश लोग प्रसन्नता आने पर परमात्मा को भूल जाते है, कोई सुख आने पर प्रभु को भूल जाते है परन्तु जैसे ही कोई कष्ट या दुःख का क्षण आता है, या कोई हानि होती है, कोई मानसिक वेदना होती है, कोई हमारे महत्वपूर्ण काम नहीं बनते है तभी हम परमात्मा को याद करते है। जब हमे अचानक कोई सुख आ जाता है, हमें कोई लाभ होता है, हमारे सारे काम बड़े ही सुन्दर ढंग से हो रहे है, हमें कोई भी शरीरिक पीड़ा नहीं है उस समय हम परमपिता परमात्मा को भूल जाते है। कबीर जी ने ठीक ही कहा है

''दुःख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय।

जो सुख में सुमिरन करे, दुःख काहे को होय।।''अर्थात्

जो प्राणी सुख में भी परमात्मा को नहीं भूलता उसे दुःख आ ही नहीं सकते, अगर आ भी जाए तो बड़ी ही सहजता के कट जाते है। यह शक्ति हमें परमात्मा से मिलती है। दुःख की घड़ियों में कई लोग परमात्मा को हीं दोष देते है कि इतना दान-पुण्य करते हैं, हर रोज यज्ञादि कार्य भी करते है, भिखारी अगर घर पर आ जाए, उसे कुछ धन भी देते है, कभी-कभी पण्डित जी को खाना भी खिलाते है। फिर परमात्मा नहीं सुनता है। परन्तु परमात्मा तो सबकी सुनता हैं। परमात्मा के लिए सभी समान से। परमात्मा कभी किसी से किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं रखता, क्योंकि वह पिता तो न्यायकारी है। वह न्यायकारी होता हुआ अन्याय कैसे कर सकता है। परन्तु परमात्मा के प्रति अटूट विश्वास, श्रद्धा का भाव रखने वाले प्रभु भक्त यही कहते है कि शायद मेरी ही भक्ति में कोई दोष. या कोई कमी रह गई होगी। जिस प्रकार रामायण में वर्णित श्री भरत जी की मर्यादा पुरषोत्तम श्री राम जी के प्रति श्रद्धा प्रेम और विश्वास दिखाया गया है।

जब 14 वर्ष के वनवास का अन्तिम दिन था। श्री राम चन्द्र जी को उसी दिन वापिस आना था। तभी श्री भरत जी रोते हुए यही सोच रहे थे और अपने नगरवासियों से कह रहे थे कि श्री राम चन्द्र मेरे ज्येष्ठ भ्राता जी तो ऐसे नहीं है फिर कहां भूल हो गई शायद मेरी ही श्रद्धा में कोई त्रुटि रह गई होगी। यह श्रद्धा का प्रतीक, यह सत्पुरुषों की निशानी क्योंकि सत्पुरुष तो अपने ही दोषों को. गिनता है, अपनी कमियों के देखता है। इसी प्रकार महाभारत में भी कौरव और पाण्डवों के गुरु ने दुर्योधन और युधिष्ठर जी को बुलाया और कहा कि तुम दोनों अपने राज्य में भ्रमण करो और पता लगाओं कि हमारे राज्य में कौन सद्गुणी है और कौन दुर्गुणी व्यक्ति है। दुर्योधन और युधिष्ठर दोनों अपनी-अपनी दिशाओं की ओर चल दिए। जब पूरे राज्य की परिक्रमा करके वापिस गुरु के पास आए। सर्वप्रिय गुरु ने दुर्योधन से पूछा कि आपको कितने व्यक्ति दुर्गुणी लगे। दुर्योधन ने उत्तर दिया कि पूरे संसार में मैं ही एक सद्गुणी हूँ। बाकी सबमें कोई-न-कोई दोष है परन्तु मुझ में कोई दोष नहीं है। उसके पश्चात् युधिष्ठर से पूछा गया कि आपको कितने व्यक्ति दुर्गुणी लगे। युधिष्ठर ने उत्तर दिया कि पूरे संसार में मैं ही दुर्गुणी व्यक्ति हूँ। बाकी मनुष्यों में कोई न कोई सद्गुण विद्यमान है। यही है सदपुरुष की पहचान कि वह दूसरों में हमेशा गुणों को ही देखता। हम भी उस दुर्योधन की तरह है जो स्वयं को अच्छा और दूसरों की बुरा बनाते जाते हैं। क्योंकि दुर्योधन केवल दुर्गुण देखता था और युधिष्ठर सद्गुणों को देखता था। यही भिन्नता है एक सज्जन और दुर्जन की। अतः कहने का भाव यही है कि संसार के मनुष्यों में दुर्गुण होते ही है परन्तु सद्गुण भी अवश्यमेव होते है। हमें भी चाहिए कि किसी व्यक्ति में अगर कोई सद्गुण है तो उसे अपना लेना चाहिए। अपने प्रत्येक दुर्गुणों को हमें त्याग देना चाहिए। क्योंकि वेद के इस मन्त्र में यही प्रार्थना है। मन्त्र सबका परिचित है। महर्षि दयानंद सरस्वती महाराज जी का यह मन्त्र बहुत ही प्रिय था।

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि पराखुव।
यद् भद्र तन्नासुव।।

अर्थात्-हे सकल जगत् के उत्पत्ति कर्ता, समग्र ऐश्वर्य युक्त शुद्ध स्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर। आप कृपा करके सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन, और दुःखों को दूर कर दीजिए। जो कल्याणकरक गुण-कर्म-स्वभाव और पदार्थ है, वह सब हमें प्राप्त कीजिए। अतः वेद के इस पवित्र मन्त्र में यही प्रार्थना है एवं आदेश भी है कि हम बुराईयों को, अज्ञान को, दुर्व्यसनादि को सदैव त्यागते रहे। अतः हम अपने व्यवहारों को भी पवित्र बनाए। परमात्मा के साथ अपने आपको जोड़ने का प्रयास करे। मर्यादा पुरुषोतम श्रीराम चन्द्र जी के जीवन से सम्बन्धित एक घटना है। इसे पथ प्रदर्शक के रूप में हमें अपने जीवन में धारण करना चाहिए। जब मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम चन्द्र जी 14 वर्षों का वनवास काट कर अयोध्या वापिस लोटे तो वह सर्वप्रथम माता कौशल्या के पास गए चरण स्पर्श किए। माता ने उन्हें गले लगाया और आशीर्वाद दिया। माता का आशीर्वाद लेकर जब माता कैकेयी के कक्ष की ओर गए तो शर्म से माता कैकेयी की आंखे झुक गई। तब श्री राम चन्द्र जी ने क्या कहा था यह बात हम सबको अपने हृदय में गांठ बान्ध लेनी चाहिएं। वह कहते है कि-हे मात कैकेयी आपको शर्माने की जरूरत नहीं है क्योंकि मैं आपका भी बेटा हूँ।

कौशल्या माता ने तो केवल राम को ही जन्म दिया हैं परन्तु हे कैकेयी माता तूने तो राम राज्य को जन्म दिया है। श्री राम चन्द्र जी ने जैसे ही शब्द कहे माता कैकेयी की आंखों में आंसू भर आए। माता कैकेयी की आंखों से प्रेमाश्रुओं की धाराए प्रवाहित होने लगी। श्री राम जी ने माता के चरण स्पर्श किए। माता कैकेयी ने भी श्री राम जी को गले लगाया और आशीर्वाद दिया। यह है। उस का माता के प्रति प्रेम जिसके कारण श्री राम को जंगल में कितनी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा था। अतः श्री राम जी के जीवन से यही प्रेरणा मिलती है कि हम सबसे प्रेम करने वाले बने। सद्पुरुषों का जीवन प्राणी मात्र के लिए होता है। सद्पुरुष दूसरों में सदैव अच्छाईयां ही देखता है और अपने अन्दर अगर कोई दोष निहित है तो उसे दूर करने का प्रयास करता है। हमें भी सद्पुरुषों का संग करते हुए अपने अन्दर छिपी हुई प्रत्येक बुराई को, अज्ञान को, दुर्गुणों का त्याग करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए।

पृष्ठ 2 का शेष-आर्य समाज के नौवें.....

क्या पड़ी है कि हम दूसरों की उन्नति के लिए अपने विकास पर अंकुश लगाएं ? हांलाकि हम ऊपर विवेचन कर आए है कि दूसरों की उन्नति के लिए प्रयास करना किसी प्रकार से भी व्यक्ति के अहित में नहीं है बल्कि उस उन्नति में उसकी अपनी उन्नति भी किसी न किसी रूप में शामिल है। मगर फिर भी महर्षि दयानन्द सरस्वती जी आर्यसमाज के दसवें नियम में अद्भुत व्यवस्था देते हैं सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए, और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें'। व्यक्ति को भ्रम के कारण लग रहा था कि नौवें नियम में मानों उसकी स्वतन्त्र रूप से प्रगति पर रोक लगाने का प्रयास किया गया है। व्यक्तिगत उन्नति में सभी की किसी प्रकार की रोक या परतन्त्रता बहुत कष्टदायक लगती है। है भी सच किसी ने बिल्कुल ही ठीक कहा है कि परतन्त्रता से बढ़कर दुनियां में और कोई दुःख नहीं है। इसी परतन्त्रा और स्वतन्त्रता का विश्लेषण करते हुए महर्षि जी ने दसवें नियम में पूरी बात स्पष्ट कर दी कि दूसरे की उन्नति में हम कहां पर परतन्त्र हैं और अपनी उन्नति करने में हम कहां तक स्वतन्त्र हैं। व्यक्तिगत उन्नति की महर्षि जी ने कोई सीमा निर्धारित नहीं की है। व्यक्ति स्वतन्त्र है कि वह जहां तक चाहे अपनी उन्नति कर सकता है मगर सामाजिक नियमों और राष्ट्र के संविधान आदि के अनुपालन में वह परतन्त्र रहे। यहां पर स्वतन्त्रता और स्वछन्दता में बहुत सुन्दर ढंग से भेद किया गया है। स्वतन्त्र होना किसी प्रकार की स्वछन्दता या उच्छृखंलता नहीं है बल्कि व्यक्तिगत अर्थात स्वयं के लिए हितकारी नियमों में व्यक्ति पूर्णरूप से स्वतन्त्र रहे मगर जो सर्वहितकारी है उनके अनुपालन में किसी प्रकार उद्दण्डता और गुण्डागर्दी उन्हें स्वीकार नहीं है क्योंकि उससे ही सामाजिक अव्यवस्था को प्रश्रय मिलता है।

हमें नौवें नियम का ही चरम विकास तथा पूर्ण व्याख्या दसवें नियम में मिलती है। नौवें नियम में कहा गया है कि दूसरे की उन्नति के साथ ही अपनी उन्नति की सार्थकता समझी जाए और फिर यहां पर कहा गया कि समाज और व्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा परतन्त्रता किस आधार पर तथा किस सीमा तक होनी अपेक्षित है। सामाजिक हित के लिए व्यक्ति भले ही परतन्त्र हो मगर अपनी उन्नति के लिए वह सर्वदा स्वतन्त्र है। यहां भी बात वही कही जा रही है कि व्यक्ति का और समाज का वास्तव में दो अलग-अलग बातें नहीं है। समाज शास्त्र का यही आधार है कि व्यक्ति समाज के हित का ध्यान रखे और समाज द्वारा व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा हो। प्रसिद्ध अंग्रेज चिन्तक जानस्टुअर्ट मिल ने जो महर्षि जी के समकालीन थे, ने अपनी पुस्तक 'लिबर्टी में आर्यसमाज के दसवें नियम का अनुवाद मोटे अक्षरों में अंकित किया है। यह पुस्तक समाज-शास्त्र पर लिखी एक प्रामाणिक पुस्तक मानी जाती है तथा मानों यह वास्तव में इस दसवें नियम की ही व्याख्या है। इस नियम के माध्यम से महर्षि दयानन्द जी का कहना है कि समाज को सुव्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए हमारे समाज या राष्ट्र द्वारा कुछ नियम व कानून आदि निर्धारित किए जाते हैं उनका पालन करना व्यक्ति के लिए अनिवार्य है मगर उसमें महर्षि जी की गहरी सोच देखिए कि उनमें भी जो 'सर्वहितकारी' है उन्हीं का अनुपालन करना अपेक्षित है। यदि समाज के लोग अपनी दादागिरी या अन्य एषणाओं के वशीभूत होकर ऐसे नियम बनाते हैं जो वेदानुकूल व सबका भला करने वाले नहीं है या देश व जाति को विनाश की ओर ले जाने वाले है तो उन्हें मानने के लिए भी व्यक्ति बाध्य नहीं है।

जहां तक अपनी उन्नति की बात है तो महर्षि जी का कथन साफ है कि अपने आपको उन्नत करने के लिए हमारे मनीषियों व शास्त्रों द्वारा जो भी निर्देश आदि दिए गए हैं उनका अनुपालन करके व्यक्ति को अपना चतुर्दिक विकास करना चाहिए, उसमें वह स्वतन्त्र है। व्यक्ति की पूर्णता धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष की प्राप्ति में है। उन्हें प्राप्त करने के लिए वह स्वतन्त्र है मगर साथ ही वह स्वतन्त्रता वहां जाकर समाप्त हो जाती है जहां ये प्राप्तियां अधर्म, अन्याय और शोषण आदि के द्वारा प्राप्त की जाती हों। हमारे यहां विश्व में प्रमुख रूप से समाज में दो प्रकार की विचारधाराएं कार्य कर रही हैं। एक के अनुसार व्यक्ति के हित के लिए समाज की उपेक्षा कर दी जानी चाहिए। इसी प्रकार की भावना से तथा कथित मठाधीश आदि मनमाने आडम्बर फैला कर जनता का शोषण कर रहे हैं या राजा लोग निरंकुशता का आश्रय लेकर लोगों को अनेक प्रकार के कष्ट देते थे। इस एकाकी विचारधारा से समाज का उत्थान होने के स्थान पर पतन ही हुआ है। दूसरी विचारधारा है कि समाज के हित को ही प्रमुखता देनी चाहिए व्यक्ति का अपना कोई हित या अहित नहीं है। समाज के हित में ही व्यक्ति का भी हित या अहित नीहित है। कम्यूनिस्ट आदि लोग आज भी इसी विचारधारा का अनुपालन करने पर जोर दे रहे हैं। इससे व्यक्ति की स्वतन्त्रता ही पूर्णतया दांव पर लग गई तथा वह समाज के लिए कार्य करने वाली एक मशीन मात्र बनकर रह गया। दयानन्द जी की दृष्टि में ये दोनों ही पक्ष अधूरे और समाज तथा व्यक्ति की उन्नति के लिए अपर्याप्त है। यहां पर हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र है मगर सर्वहितकारी नियम में परतन्त्रता रूपी अंकुश लगा दिया गया है। निश्चित रूप से यह रोक व्यक्ति व समाज की उन्नति का ही एक हिस्सा है। अनुशासन कोई परतन्त्रता नहीं होती है बल्कि इससे व्यक्ति और समाज एक सुव्यवस्थित ढंग से विकास की ऊंचाईयों को छूने की दिशा में द्रुतगति से आगे बढ़ता है। प्रो. रत्नसिंह जी ने स्वतन्त्रता और परतन्त्रता को योगदर्शन के यमों व नियमों के अनुपालन के साथ जोड़ते हुए लिखा है कि पांच यमों अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन करने में व्यक्ति को परतन्त्र रहना चाहिए तथा पांच नियमों अर्थात् शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान का पालन करने में व्यक्ति स्वतन्त्र है। वास्तव में यमों की अनुपालन समाजिक सुव्यवस्था के लिए नितान्त अनिवार्य है और नियम व्यक्ति की उन्नति के लिए अनिवार्य है। यमों की परन्तन्त्रता या नियमों की स्वतन्त्रता का यह अर्थ कदापि नहीं है कि किसी एक की भी अवहेलना करें बल्कि इस रूप में भी इन दोनों की अनिवार्यता को ही दर्शाया गया है। व्यक्तिगत तथा समाजगत दोनों ही कर्त्तव्यों का पालन करने की बात कहीं अनिवार्यता को ही दर्शाया गया है। व्यक्तिगत तथा समाजगत दोनों ही कर्त्तव्यों का पालन करने की बात कही गई। महर्षि दयानन्द जी ने इन दोनों को ही उन्नति के लिए अनिवार्य बताते हुए सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लास में लिखा है-'यमों के बिना केवल इन नियमों का सेवन न करें, किन्तु इन दोनों का सेवन किया करे। जो यमों का सेवन छोड़ के केवल नियमों का सेवन करता है, वह उन्नति को नहीं प्राप्त होता, किन्तु अधोगति, अर्थात् संसार में गिरा रहता है। 'व्यक्ति और समाज की उन्नति को इस ढंग से सन्तुलित करने की महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की सोच अद्भुत तथा अत्यधिक ग्राह्य है। इसी से व्यक्ति और समाज की उन्नति का मार्ग समुचित ढंग से प्रशस्त होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्यसमाज का नौवां और दसवां नियम सामाजिक तथा व्यक्तिगत उन्नति की दिशा में दिया गया एक ऐसा सूत्र है जो हमें सभी प्रकार की उन्नतियों तक पहुंचाकर व्यक्ति और समाज दोनों के कर्त्तव्य और अधिकारों को विवेचित करता है।

पृष्ठ 4 का शेष-ईश्वर व जीवात्मा.....

प्रलयकाल समाप्त होने पर ईश्वर सृष्टि की रचना कर इसे पुनः उत्पन्न करता है व चलाता है तथा यथासमय प्रलय करता है। इस प्रकार से सृष्टि की उत्पत्ति व प्रलय का क्रम अनादि काल से चला आ रहा है और भविष्य में भी चलता रहेगा।

महर्षि दयानन्द ने न केवल तीन अनादि पदार्थ ईश्वर, जीव व प्रकृति के सत्य सिद्धान्त 'त्रैतवाद' व इनके स्वरूप का ही प्रचार किया अपितु वेदों का पुनरुद्धार भी किया। वेद ही मानव मात्र का सबसे बड़ा धन व पूंजी है। वेद से ही कर्तव्य-अकर्तव्य का बोध होता है जिसे 'धर्माधर्म' कहते हैं। इस धर्माधर्म से ही मनुष्य को बन्ध व मुक्ति होती है। महर्षि दयानन्द के सम्पूर्ण कार्यों को जानने के लिए सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, संस्कार विधि सहित उनके समस्त ग्रन्थ, उनके जीवन चरितों और पत्रव्यवहार आदि का अध्ययन करना चाहिये। उन्होंने ईश्वर की सच्ची उपासना के सात अन्य महायज्ञों देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ एवं बलिवैश्व-देवयज्ञ का भी पुनरुद्धार किया। इसका अवलम्बन कर मनुष्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। इस संक्षिप्त लेख में हम पाठकों को महर्षि दयानन्द को परा विद्या के क्षेत्र में संसार को ईश्वर, जीव व प्रकृति के सत्य व यथार्थ स्वरूप से परिचित कराने व मनुष्यों को धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के मार्ग का ज्ञान कराकर मोक्ष तक पहुंचाने के लिए संसार का सबसे बड़ा हितैषी व पुरोधा मानते हैं। महाभारत काल के बाद अन्य कोई महापुरूष ऐसा नहीं हुआ जिसने मनुष्य को संसार विषयक समस्त "सत्य ज्ञान" से परिचित कराया हो जैसा महर्षि दयानन्द ने कराया है। महर्षि दयानन्द 'न भूतो न भविष्यति' महापुरूष थे। उनके मनुष्य जीवन की इहलौकिक व पारलौकिक उन्नति में योगदान को स्मरण कर संसार के सभी मनुष्यों को लाभ उठाना चाहिये।

गांधी आर्य हाई स्कूल बरनाला की वार्षिक खेल सम्पन्न

गांधी आर्य हाई स्कूल बरनाला की वार्षिक ऐथलैटिक्स खेलें सम्पन्न हुई। दो दिवसीय स्कूल खेलों में लगभग प्रत्येक विद्यार्थी ने भाग लिया। प्रोग्राम के मुख्य अतिथि दीपक सोनी एम. डी. आस्था इन्कलेव विशेष रूप से पधारे। विशेष अतिथि प्रेम कुमार बांसल प्रधान गांधी आर्य स्कूल, डा. सूर्य कान्त शोरी प्रधान आर्य समाज, भारत भूषण मैनन कार्यकारी सदस्य आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, कुलवन्त राय गोयल एडवोकेट, राज कुमार इंजीनियर के अतिरिक्त गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। स्कूल प्रभारी रामकुमार सोबती ने सभी का स्वागत किया। प्रेम कुमार बांसल एवं डा. सूर्यकान्त शोरी ने झण्डा फहरा कर खेलों का शुभारम्भ किया। दीपक सोनी व भारत भूषण मैनन ने पारितोषिक वितरित किए।

स्कूल डी. पी. ई. चरणजीत शर्मा, बलविन्द्र शर्मा एवं राजमहिन्द्र द्वारा ऐथलैटिक्स करवाई। विद्यार्थियों के भिन्न-भिन्न प्रतियोगिताओं में **50 मीटर दौड़** में अंजली प्रथम, अनुराधा द्वितीय, आशु तृतीय, लड़के महिताब आलम प्रथम, अजय द्वितीय, सूरज तृतीय, सीनियर विद्यार्थियों में मनीश सिंह प्रथम, कृष्ण कुमार द्वितीय, हरजिन्द्र तृतीय, लड़कियां अमनदीप कौर प्रथम, सोनिया द्वितीय, प्रभजोत कौर तृतीय। **200 मीटर दौड़** में यूनियर लड़के महिताब आलम प्रथम, सूरज कुमार द्वितीय, अजय कुमार तृतीय, लड़कियां प्रीति शर्मा प्रथम, सरोज द्वितीय, सिमरनजीत तृतीय। सीनियर ग्रुप सुखचैन प्रथम, कृष्ण कुमार द्वितीय, मनीश तृतीय, लड़कियां गायत्री प्रथम, सोनिया द्वितीय, पायल शर्मा तृतीय। **400 मीटर दौड़** में यूनियर सागर प्रथम, अनुभव द्वितीय, नितिन तृतीय, लड़कियां अंजलि प्रथम, अनुराधा द्वितीय, खुशी तृतीय, सीनियर सुखचैन प्रथम, हरजिन्द्र द्वितीय, जयकरण तृतीय, लड़कियां सोनिया प्रथम, पायल द्वितीय, अमनदीप कौर तृतीय। **लांग जम्प**-लड़कियां यूनियर खुशदीप प्रथम, अंजलि द्वितीय, दीया तृतीय। लड़के अजय प्रथम, सोनू द्वितीय, महिताब आलम तृतीय। सीनियर लड़कियां गायत्री प्रथम, सिमरन द्वितीय, आकांशा द्वितीय, रजनी तृतीय। लड़के कृष्ण प्रथम, हरजिन्द्र द्वितीय, नितिन तृतीय। **शाटपुट**-लड़के हरजिन्द्र सिंह प्रथम, सौरव द्वितीय तथा संतोष तृतीय रहे।

बैस्ट एथलीट-यूनियर लड़के महिताब आलम, सीनियर लड़के हरजिन्द्र तथा कृष्ण। लड़कियां सोनिया सीनियर, अंजलि यूनियर बैस्ट एथलीट चुने गए।

खेलों में स्कूल अध्यापकों प्रमोद कुमार, वीरेन्द्र कुमार, रामचन्द्र, सुमन जिन्दल, निर्मला देवी, नवीना रानी, मीनाक्षी जोशी, वीना रानी, निधि, सुनीता, रबनीत, सुषमा रानी, रीना रानी, रणजीत शास्त्री तथा सभी अध्यापकों ने विशेष भूमिका निभाई। प्रोग्राम को प्रेम कुमार बांसल तथा भारत भूषण मैनन ने सम्बोधित किया तथा विद्यार्थियों को खेलों के प्रति पढ़ाई के साथ-साथ रूचि रखने की प्रेरणा दी।

-राम कुमार सोबती, प्रिंसीपल गांधी आर्य हाई स्कूल बरनाला

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहैक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है कि आपका सहयोग हमें प्राप्त होगा।

-व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

आर्य समाज बंगा का 34वां वार्षिक उत्सव सम्पन्न

दिनांक 19.11.15 से 22.11.15 तक दिन (वीरवार, शुक्रवार, शनिवार, रविवार) आर्य समाज बंगा का वार्षिक उत्सव बड़े हर्षोल्लास एवं धूमधाम से मनाया गया। इस प्रोग्राम में आचार्य रामानन्द शिमला, श्री सुरेश कुमार शास्त्री. आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ब्रह्मचारी सोमवीर आर्य दिल्ली, श्री सुखपाल आर्य भजनोपदेशक सहारनपुर, श्री सुखदेव आर्य तबला वादक करनाल से पधार कर उत्सव की शोभा को बढ़ाया। इसके अतिरिक्त ब्रह्मचारी सानन्द जी पानीपत से पधारे। उत्सव के पहले तीन दिन प्रात: चतुर्वेद शतक यज्ञ और सायं वेद कथा एवं वेद प्रचारार्थ भजन होते रहे। वेद कथा उपरान्त प्रतिदिन ऋषि लंगर चलता रहा। यज्ञ ब्रह्मा आचार्य रामानन्द शिमला थे और उनके सहायक आचार्य सानन्द पानीपत वाले थे। प्रात: यज्ञ समय और सायं कथा समय दोनों समय खूब उपस्थिति होती रही। सभी नर नारियों ने यज्ञ में बड़ी श्रद्धा से आहुति डाली। आखिरी चौथे दिन प्रात: 8 बजे यज्ञ आरम्भ हुआ। आचार्य जी ने सभी यजमानों को यज्ञ की पूर्णाहुति के पश्चात् आर्शीवाद दिया। यज्ञ में यजमानों एवं अन्य अतिथियों का उत्साह देखते ही बनता था। श्री श्याम लाल आर्य ने यज्ञ की व्यवस्था ठीक ढंग से की।

यज्ञ की पूर्णाहुति के पश्चात् सभी अतिथियों को बड़ी श्रद्धा से प्रात: राश करवाया गया। इसके पश्चात् सरदार भूपिन्द्र सिंह सिद्धू, सलोह (नवांशहर) ने ओ३म ध्वज अपने कर कमलों द्वारा फहराया। ओ३म् ध्वज गीत श्री सुखपाल आर्य द्वारा बड़े मधुर स्वर से गाया गया। सभी ने करतल ध्वनि करके हर्ष प्रकट किया गया। श्री शादी लाल महेन्द्र प्रधान आर्य समाज बंगा ने श्री भूपिन्द्र सिंह सिद्धू जी को शाल ओढ़ा कर सम्मानित किया गया। श्रीमती नीलम गोगना एवं श्रीमती बिमला रानी ने सरदार भूपिन्द्र सिंह जी सिद्धू की धर्मपत्नी सरदारनी रूपिन्द्र कौर सिद्धू जी को शाल ओढ़ा कर सम्मानित किया गया। इस सुअवसर पर सरदार भूपिन्द्र सिंह जी ने आर्य समाज बंगा को अपनी नेक कमाई से ग्यारह हजार (11000/-) रुपए का सात्विक दान दिया। ठीक ग्यारह बजे आर्य महा सम्मेलन (पश्चात् ध्वजारोहण) आरम्भ हुआ। आचार्य रामानन्द जी शिमला वालों ने सम्मेलन का अध्यक्ष पद सम्भाल कर सम्मेलन की शोभा को बढ़ाया। सम्मेलन का विषय राष्ट्र रक्षा सम्मेलन एवं युवकों का चरित्र निर्माण कैसे हो रखा गया था। मंच का संचालन करने का भार श्री श्याम लाल आर्य पुरोहित आर्य समाज बंगा ने संभाला। सभी विद्वानों ने वेद मंत्रों एवं अन्य उदाहरणों द्वारा राष्ट्र रक्षा एवं चरित्र निर्माण पर बड़े प्रभावी ढंग से अपने-अपने विचार रखे जिसका जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। श्री सुखपाल आर्य के भजनों ने खूब समय बांधा। देश भक्ति के गीत सुनाकर सबके हृदय में देश भक्ति का जोश भर दिया। आचार्य रामानन्द जी के प्रवचन को सुनकर सभी ने सराहना की और अपने-अपने मन में राष्ट्र रक्षा का संकल्प किया। यह सम्मेलन ठीक 2 बजे तक चला। आर्य समाज का प्रांगण दर्शकों एवं श्रोताओं से भरा हुआ था।

इसके पश्चात् सिलाई सीखने वाली छात्राओं को महर्षि दयानन्द नि:शुल्क सिलाई सैन्टर आर्य समाज बंगा की ओर से सिलाई का कोर्स पास करने वाली छात्राओं को प्रमाण पत्र एवं प्रशस्ति चिन्ह प्रदान किए गए। ज़रूरतमंद छात्राओं को दानी महानुभावों द्वारा दान की गई 10 (दस) सिलाई मशीनें प्रदान की गईं जिसकी जनता ने बड़ी प्रशंसा की। इस सम्मेलन की शोभा बढ़ाने बंगा नगर निवासियों के अतिरिक्त चौधरी त्रिलोचन सिंह सूद एम. एल. ए. हल्का बंगा श्री कमल किशोर प्रधान आर्य समाज गढ़ा (जालन्धर), श्रीमती निर्मल देवी म्यूनीस्पिल कमिश्नर परिवार सहित, श्री गुरुदेव सिंह प्रधान आर्य समाज बलाचौर अपने अनय साथियों सहित, डा. वी. के. अरोड़ा नवांशहर सह परिवार पधारे। पहले की तरह इस बार भी निकटवर्ती गांवों जैसे बलाचौर, थांदीया, बहराम, मुकन्दपुर, फगवाड़ा, शहीद भगत सिंह नगर, पूनीयां, पहलावा, गढ़शंकर से श्रोतागण पहुंचे।

आर्य समाज के प्रधान द्वारा श्री सुखपाल आर्य भजनोपदेशक एवं उनके साथी तबला वादक जी सुखदेव आर्य को शाल एवं दक्षिणा प्रदान करके सम्मानित किया गया। इस उत्सव को सफल करने के लिए डा. वी. के अरोड़ा नवांशहर, डा. राजेश शर्मा पूनीयां, श्री नरेन्द्र कुमार गोगना समाज मंत्री, श्री राम भरोसे आर्य, श्री देवेन्द्र सूदन, श्री राकेश सूरी, श्री विनोद शर्मा मालिक नारायण ऑटोज बंगा, श्री सुशील कुमार, मनजिन्द्र कुमार, श्री विकास गोगना, श्री राम मिलन आर्य, श्रीमती नीलम गोगना, श्रीमती बिमला आर्य, श्रीमती रक्षा रानी का विशेष योगदान रहा। अन्त में प्रधान आर्य समाज बंगा ने सरदार भूपिन्द्र सिंह सिद्धू गांव सलोह (नवांशहर) एवं सरदारनी रूपिन्द्र कौर सिद्धू धर्मपत्नी सरदार भूपिन्द्र सिंह सिद्धू, पत्रकार महोदयों एवं सभी अतिथियों (विद्वत मंडल) एवं जनता का धन्यवाद किया। ठीक 2.30 बजे शान्ति पाठ के पश्चात् ऋषि लंगर लगाया गया। सभी नर नारियों एवं बच्चों में बड़े उत्साह से ऋषि लंगर ग्रहण किया। उत्सव बहुत ही सफल रहा।

-नरेन्द्र कुमार गोगना, मंत्री आर्य समाज

आर्य समाज जवाहर नगर लुधियाना का वार्षिक सम्पन्न

आर्य समाज जवाहर नगर, लुधियाना का वार्षिक उत्सव 26 से 29 नवम्बर 2015 को उत्साह व श्रद्धा के साथ मनाया गया। इस शुभ अवसर का आरम्भ आर्यसमाज के सुसज्जित सत्संग भवन में 27 नवम्बर को प्रातः मंगल यज्ञ से हुआ जिसके ब्रह्म आर्य समाज के पुरोहित पं० बालकृष्ण जी शास्त्री थे। यज्ञ ज्योति श्रीमती एवं श्री सतेन्द्र मोहन जी मैहता एवं श्री अतुल मेहता जी ने प्रज्वलित की। उत्सव का कार्यक्रम प्रतिदिन प्रातः एवं रात्रि को चला। आर्य जगत के मूर्धन्य वैदिक विद्वान डॉ० सोमदेव जी शास्त्री (मुम्बई) के उत्तम व प्रेरणा दायक प्रवचन हुए जिसमें उन्होंने परमात्मा का उपकार मानना, उसकी उपासना, कर्मफल व्यवस्था, आर्य समाज के नियमों, वेद के आधार पर धर्म की व्याख्या इत्यादि विषयों पर विस्तार से बतलाया। सहारनपुर से पधारे पं० सुखपाल जी भजनोपदेशक ने अपने मधुर स्वर में भजनों को गा कर समय बांधे रखा।

आर्य समाज जवाहर नगर लुधियाना के वार्षिक उत्सव पर पधारे आर्यजन एवं बहनें

उत्सव का समापन समारोह 29 नवम्बर रविवार को हुआ। प्रातः 8.30 बजे यज्ञ आरम्भ हुआ। तीन यज्ञ कुण्डों पर बैठे यजमानों ने बड़ी श्रद्धा से यज्ञ में आहुतियां प्रदान की। वेद मंत्रों के उच्चारण एवं यज्ञ की सुगन्धि से चारों ओर आनन्द बरसता रहा। इस शांत वातावरण में यज्ञ की पूर्णाहूति हुई। सभी यजमानों को विद्वानों द्वारा आशीर्वाद दिया गया। सभी उपस्थित जनों को यज्ञ-शेष तथा फलों का प्रसाद दिया गया। यज्ञ के पश्चात लुधियाना के समर्पित आर्य समाजी परिवार की मुख्या श्रीमती कुलवंती देवी जी गुप्ता के सुपुत्रों श्रीमती एवं श्री चन्द्रशेखर एवं सुवंश इन्टरप्राइज़ज़े लुधियाना के मालिक श्री राजीव गुप्ता व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती अनुपंमा गुप्ता ने ध्वाजारोहण किया। ध्वज गीत के उपरान्त आर. एस माडल स्कूल लुधियाना के छात्रों ने सुन्दर बैण्ड बजाकर सभी को आकर्षित किया। आर्य समाज की ओर से सुन्दर स्मृति चिन्ह परिवार को भेंट किया गया।

मंच का संचालन करते हुए आर्य समाज के महामंत्री श्री अनिल कुमार जी ने सभी विद्वानों तथा आर्य जनता का अभिनन्दन किया और पं० सुखपाल जी को भजन प्रस्तुत करने के लिए आमन्त्रित किया। उन्होंने अपने भजनों की लड़ी को प्रभु भक्ति के भजनों से "भूले न भूले न प्रभु याद रहे" तथा "जीवन प्रभु चिन्तन में गुजर जाए तो अच्छा" प्रारम्भ कर महर्षि दयानन्द पर आधारित तथा राष्ट्र भक्ति के गीतों में रंग दिया। उस उत्सव में खालसा कालेज फॉर वूमैन लुधियाना की पांच छात्राओं को B.A. Final की परीक्षा में संस्कृत विषय में अपने महा विद्यालय में प्रथम पांच स्थान प्राप्त करने पर श्रीमती सुमित्रादेवी जी बस्सी द्वारा आरक्षित राशि से पारितोषिक एवं स्मृति चिन्ह देकर सम्मानित किया गया।

श्रद्धेय आचार्य सोमदेव जी ने उत्सव का संदेश देते हुए कहा कि स्वामी दयानन्द जी ने वेद के सही अर्थों को समझाकर सभी धर्मों के लोगों को जोड़ने का प्रयास किया। उन्होंने आगे बतलाया कि राष्ट्र की स्वतन्त्रता संग्राम में महर्षि दयानन्द एवं उनके अनुयायियों ने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। स्वामी दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज सभी अन्ध-विश्वासों पाखण्डों तथा सभी प्रकार के भेद-भावों को मिटा कर मानव जाति को एक सूत्र में बांधने का निरन्तर प्रयास कर रहा है। हम सबको उस राष्ट्र एकता अभियान में अपना पूर्ण सहयोग देते रहना चाहिए। आर्य समाज जवाहर नगर के प्रधान डॉ० विजय सरीन जी ने उत्सव की सफलता के लिए सर्वप्रथम परमात्मा का धन्यवाद किया। तदोपरान्त सभी विद्वानों, संगीतज्ञों तथा उपस्थित आर्य जनता का धन्यवाद किया। लुधियाना की सभी आर्य समाजों, स्त्री आर्य समाजों, शिक्षक संस्थाओं पुरोहित सभा आर्य वीर दल के साथ साथ आर्य समाज समराला, पायल के अधिकारियों व सदस्यों ने उपस्थित होकर धर्म लाभ उठाया तथा उत्सव की शोभा को बढ़ाया कार्यक्रम के उपरान्त दोपहर 1 बजे सभी ने मिलकर प्रेमपूर्वक ऋषि लंगर ग्रहण किया।

आर्य समाज जवाहर नगर के उपप्रधान श्री राजेन्द्र बेरी, बृजमोहन अरोड़ा, महामंत्री श्री अनिल कुमार, कोषाध्यक्ष श्री राजीव गुप्ता, सह कोषाध्यक्ष श्री अजय मोंगा, मंत्री श्री बृजेश पुरी, पुस्तकाध्यक्ष श्रीमती वीना गुलाटी, अतंरग सदस्य श्री ओम प्रकाश गुप्ता, हंसराज लाल सहगल, संजीव गुप्ता श्रीमती अनुपमा गुप्ता, श्वेता सेतिया, ममता शर्मा आदि का विशेष सहयोग रहा। आर्य समाज के सभी सदस्यों एवं परिवारों के बच्चों ने बड़ी लगन के साथ कार्य किया। सभी का हृदय से धन्यवाद।

विजय सरीन-प्रधान

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। E-mail: apspunjab2010@gmail.com
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।